M.A. Fourth Semester

Third Paper

Agriculture Geography

BY

Dr. Shivanand Yadav

Assistant professor and Head

Department of Geography

Harishchandra P.G.College ,Varanasi

इसकी प्राप्ति की जा सकती है।

प्रश्न : बहु भूमि उपयोग सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए तथा इसके औचित्य को समझाइये

या

भारत के लिए बहु-भूमि उपयोग सिद्धान्त की उपादेयता समझाइये।

बहु-भूमि उपयोग सिद्धान्त : Multiple-land use Theory

अनुकूलतम भूमि उपयोग की प्राप्ति के उद्देश्य से यह वांछनीय है कि भूमि उपयोग प्रयोजना का स्तर कृषि परिवार से प्रारम्भ होकर राष्ट्रीय स्तर तक हो। परिवार एवं ग्राम स्तर तक भूमि उपयोग समस्याओं का संबंध निम्न पहलुओं से होता है :—

(1) भूमि की उपयोग क्षमता निर्धारण।

(2) जीवन स्तर का निर्धारण।

(3) संसाधनों की रुपरेखा (4) खेत का आकार एवं आका बिखरा होना (5) तकनीकी अगीकरण

(6) सामाजिक रूढ़िवादिता एवं (7) भूमि उपयोग के विभिन्न पक्षों के अन्तर्गत सन्तुलन की रुपरेखा एवं अनुकूलतम निर्धारण

हम जानते है कि भूमि उपयोग के सम्बन्ध में मानव की आवश्यकताएं अनेक हैं जैसे उद्योग, आवास, खाद्यपदार्थ, यातायात एवं संचार के साधन, मनोरंजन के साधन, स्कूली शिक्षा, सुरक्षात्मक प्रशिक्षण, मैदान, बाग-बगीचे, उद्यान आदि।

इस सीमित भूमि संसाधन पर अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहु-भूमि उपयोग को अपनाना अनिवार्य होता है। किसी क्षेत्र मे भूमि उपयोग इस प्रकार अपनाया जाय जिससे उस भूमि इकाई का अनेक तथा उपान्त एक उपयोग किया जा सके।

इस प्रकार यह आवश्यक है कि मानव की प्राथमिक कार्यिक आवश्यकता की उचित पूर्ति उद्योगों की स्थापना के माध्यम से की जाय। भूमि का यह निर्धारण किसी भी कस्बे में अच्छी नगरीय योजना के द्वारा करते समय इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए

(i) अच्छी भूमि पर उद्योगों की स्थापना कभी न की जाय तथा

(ii) औद्योगिक स्थापना के कारण आर्थिक कृषि भूमि इकाई किसी भी रुप में खण्डित न की जाय।

मानव की दूसरी आधार भूत आवश्यकता आवास है। रहन-सहन का जैसे-जैसे स्तर ऊँचा होता जा रहा है, मनुष्य को भवन निर्माण की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इसके लिए चाहिए कि:-

(i) उत्पादक कृषि भूमि पर जहाँ तक सम्भव हो सके आवास न बनाये जाय।

(ii) आवासीय उपयोग के अन्तर्गत आवश्यकता से अधिक भूमि का उपयोग न किया जाय।

(iii) नगरों में आवासीय विस्तार के दृष्टिकोण से क्षैतिज आवासीय योजना के स्थान पर लम्बवत योजना को प्राथमिकता दी जाय।

मानव की तीसरी आधार भूत आवश्यकता भोजन तथा भोजन को प्राप्त करने का कार्य है। बढ़ती हुई जनसंख्या का सीमित भूभाग से भरण-पोषण करने के लिए यह आवश्यक है

कि कृषि का योजनाबद्ध विकास किया जाय। इसके लिए—

(i) खाद्य एवं मुद्रादायिनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र निर्धारण स्थानीय तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए।

(ii) कुल उत्पादन वृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति —— (a) बोयी गयी भूमि के क्षेत्र में वृद्धि करके (b) बहुफसली क्षेत्र में वृद्धि करके (c) फसलों के क्षेत्र में लाभप्रद हेर-फेर करके और (d) प्रति एकड़ क्षेत्र में उपज वृद्धि करके की जानी चाहिए।

(iii) प्रति एकड़ उपज वृद्धि का लक्ष्य राष्ट्रीय उपज-स्तर के समान होना चाहिए।

मानव समाज की चौथी आवश्यकता मनोविनोद है। इसके अन्तर्गत पार्क, खेलकूद के मैदान, अवकाश, मनोविनोद स्थल आदि स्थान सम्मिलित हैं। मनुष्य की इन सभी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। यह सब कार्य उत्पादक कृषि भूमि के अतिरिक्त अनुत्पादक स्थलों में होना चाहिए।

मानव समाज की पाँचवी आवश्यकता यातायात-साधन है। यातायात साधन किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि में रक्त संचार करने वाली धमनियों के समान आवश्यक होता है। राष्ट्र के आर्थिक विकास के साथ-साथ यातायात साधनों का जाल बिछाना अनिवार्य होता है। इसके लिए तीन मुख्य पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

(i) प्रत्येक गाँव का सम्पर्क सड़क से स्थापित हो जाय।

(ii) फार्मों की स्थिति सड़क के एक तरफ हो तथा

(iii) सड़कों एवं फार्म मार्गों के निर्माण से जितनी कृषि भूमि कम हो उस कमी को बहु-फसली क्षेत्र बढ़ाकर पूरा किया जाना चाहिए।

इन पाँचों आवश्यकताओं के अतिरिक्त उपयोग आयोजना के फलों का उपयोग करने के लिए राष्ट्र की सुरक्षा सर्वाधिक आवश्यक होती है। इसलिए भूमि उपयोग का एक प्रमुख पक्ष राष्ट्र की सुरक्षा के लिए होता है। सुरक्षात्मक तथा अन्य संस्थानों को स्थापित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो उत्पादक भूमि का प्रयोग न किया जाय।

कृषि की समस्याएं (विकासशील प्रदेश)

"Problems of Agriculture" (Developing Countries)

((With special reference to India))

विकासशील देशों में कृषि संबंधी समस्याओं को कई वर्गों में रखा जा सकता है

(i) प्राकृतिक समस्याएं :-

इसमें भूमि, जल प्राप्ति, जलवायु आदि की समस्याएं आती हैं।

विकासशील देशों की कृषि प्रधानतः प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है, भूमि की सुरक्षा, जल का आर्थिक उपयोग, तथा जलवायु के तीव्र पक्षों पर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता है।

अधिक उत्पादन के क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाना तथा मिट्टी के अपरदन को रोकना आवश्यक होता है किन्तु अफ्रीका तथा दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों के विस्तृत प्रदेशों में स्थानांतरी कृषि प्रचलित है भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होते ही उसे छोड़कर अन्य स्थान साफ कर लिया जाता है। इस प्रकार अपरदन से विशाल क्षेत्र नष्ट हो जाते हैं। दूसरी समस्या अतिवृष्टि है। जिसके कारण बाढ़ से विस्तृत कृषि प्रदेश नष्ट हो जाते हैं।

(ii) आर्थिक समस्याएं :-

इसके अन्तर्गत कृषि में पूँजी के सीमित विनियोग, परिवहन तथा कृषि के आवश्यक उपकरण जैसे उत्तम बीज, रासायनिक खाद, आदि के कृषि प्रदेश में वितरण की समस्याएं हैं।

विकासशील देशों में सबसे गम्भीर समस्या पूँजी की है, कृषि के विकासशील क्षेत्रों के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है, सार्वजनिक तथा निजी दोनों प्रकार की पूँजी इन देशों में बहुत सीमित है।

उर्वरक : खाद्य तथा कृषि संगठन (F.A.O) के प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से ही 50% उत्पादन बढ़ सकता है। किन्तु समस्या यह है कि विकासशील देश समुचित मात्रा में उर्वरकों का उत्पादन नहीं करते और उन्हें विदेशों से आयात करना होता है।

उत्तम बीज :- विकासशील देशों में बीजों का विकास तो अनुसंधान केन्द्रों में हुआ है किन्तु इसमें अनेक समस्याएं विद्यमान हैं जैसे - बीजों को साफ करना, उत्तमता के अनुसार छांटना, सम्पूर्ण प्रदेश में बीज उत्पादन के कार्य विकसित करना आदि।

सिंचाई के साधन :- कृषि उत्पादन को बढ़ाने के साधनों में सबसे महत्वपूर्ण

सिंचाई के साधन हैं किन्तु सिंचाई के साधन जुटाना श्रम साध्य तो है ही सम्भावित पूँजी की आवश्यकता होती है। विकासशील देशों में यही समस्या रही है। विकासशील देशों में विद्युत उत्पादन की भी समस्या है, न केवल सिंचाई के लिए वरन् प्रदेश के सम्पूर्ण विकास के लिए शक्ति के साधनों का विकास आवश्यक है। जो कि विकासशील देशों में पिछड़ा हुआ है।

इसी प्रकार इनमें कृषि के यंत्र तथा मशीनें, कीट-कीटाणुओं की रोकथाम, सिंचाई आदि की समस्याएं लगभग सभी विकासशील देशों में गम्भीर हैं।

(iii) **संगठन संबंधी समस्याएं** :- इसके अन्तर्गत भूमि स्वामित्व, चक का आकार, सरकारी सहायता तथा सरकारी नीतियों संबंधी समस्याएं आती है।

(iv) **कृषि उत्पादन का विक्रय मूल्य तथा बाजार** :- कृषि उत्पादन के मूल्य निर्धारण का महत्व दो पक्षों में विशेष रूप से है। जिन वस्तुओं का निर्यात होता है उनका मूल्य स्थानीय बाजार में असाधारण रूप से बढ़ जाता है। सरकार द्वारा मूल्य निर्धारण आवश्यक हो जाता है। दूसरे यदि माँग की तुलना में उत्पादन कम हो जाता है तो मूल्य बढ़ते जाते हैं तथा नियंत्रण न किया जाय तो जनसाधारण के आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती।

विक्रय क्षेत्र का सुधार तथा उपभोक्ता को कृषि-उत्पादन की प्राप्ति विकासशील देशों की एक गम्भीर समस्या है।

(v) **कृषि संबंधी ज्ञान का प्रसारण** :- विकासशील देशों में शिक्षित वर्ग की कमी एक गम्भीर समस्या है। यह वर्ग नगरों में केन्द्रित है तथा अधिकतर कृषि के अतिरिक्त अन्य आर्थिक कार्यों में लगा है। अतः साधारण किसान अशिक्षित तथा कृषि के विकास से अनभिज्ञ हैं। अज्ञानता के कारण सरकारी सुविधाएं, बैंकों से ऋण, बाजार संबंधी ज्ञान से भी वे वंचित रहते हैं। सूचना तथा प्रसारण को भी वे उपयोग नहीं कर पाते।

भारत में कृषि संबंधी समस्याएं :- पाश्चात्य देशों के विपरीत भारत की सम्पत्ति होते बिखरे खेतों के टुकड़े हैं जिन पर शताब्दियों से बिना सिंचाई और उर्वरकों के उपयोग से खेती की जाती है जिससे उत्पादकता न्यूनतम है। वास्तव में भारत में औद्योगीकरण के पूर्व कृषि के पुनरुद्धार (Rehabilitation) की समस्या है।

कृषि समस्याओं को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

(i) प्राकृतिक (भौतिक) समस्याएं।
(ii) सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याएं।
(iii) कृषि-तकनीकी संबंधी समस्याएं।

(i) भौतिक समस्याएं :- वर्षा ⇒ भारत की कृषि के लिए सबसे गम्भीर समस्या मानसून की है। उष्ण कटिबन्ध में स्थित होने के कारण भारत में तापमान पूरे वर्ष भर ऊँचा रहता है; यदि पर्याप्त जल मिलता रहे तो साल में कई फसलें पैदा करना कठिन नहीं है किन्तु दुर्भाग्यवश वर्षा यहाँ केवल 3-4 महीने होती है अन्य महीने लगभग सूखे रहते हैं, आकाश स्वच्छ रहता है तथा पर्याप्त वाष्पीकरण होता है। अतः वर्ष भर की कृषि की भाग्य-विधाता यह चार महीने की वर्षा ही है।

वर्षा की मात्रा भी सभी भागों में समान नहीं है, जिसका सीधा प्रभाव वहाँ की कृषि पर होता है। तटीय प्रदेश, पर्वतीय प्रदेश एवं अनेक निकटवर्ती भाग ऐसे हैं जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 100 सेमी से अधिक है। इनमें आसाम, बंगाल, उत्तरी बिहार एवं पूर्वी उ०प्र० आदि हैं दूसरी ओर भारत के भीतरी भाग हैं जहाँ औसत वर्षा 75 सेमी से कम है। इनमें राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, आदि आते हैं।

वर्षाकाल में भी वर्षा का प्रतिवर्ष समान वितरण नहीं होता। मानसून के आने का समय साधारणतः निश्चित है, किन्तु किसी वर्ष यह जल्दी आ जाता है अथवा वर्षाकाल समय से पहले समाप्त हो जाता है। ऐसे वर्ष भी होते हैं जब वर्षाकाल के बीच पर्याप्त समय के लिए सूखा मौसम हो जाता है। वर्षा की यह अस्थिरता फसलों को बहुत हानि पहुँचाती है।

अतिवर्षा एक अन्य गम्भीर समस्या है जो पुनः मानसून की विशेषता है। इसी कारण विस्तृत कृषि प्रदेशों का जलमग्न हो जाना एक साधारण घटना है। यह समस्या उत्तर भारत में अधिक गम्भीर है। हिमालय में औसत वर्षा अधिक होती है। अतिवृष्टि के कारण यह अतिरिक्त जल नदियों में आता है तथा तटीय प्रदेशों में अपेक्षाकृत नीचे भागों में बाढ़ आ जाती है। बिहार, उ० प्र०, एवं बंगाल के किसी न किसी भाग में बाढ़ लगभग प्रतिवर्ष आ जाती है।

तापमान :- देश में उष्णकटिबन्धीय जलवायु होने से तापमान अधिक होता है जिससे धरातलीय जल का वाष्पीकरण सर्वाधिक मात्रा में होता है अतः वर्षा का पूरा लाभ फसलों को नहीं मिलता। वाष्पीकरण के फलस्वरूप मिट्टी का जल सूखता जाता है परिणामस्वरूप भूमिगत जल का स्तर धरातलीय सतह तक आकर मिट्टी में लवण की मात्रा में वृद्धि कर देता है। और मिट्टी अनुपजाऊ बनने लगती है। इस प्रकार भूमि के नष्ट होने की समस्या भारत के लगभग सभी भागों में मिलती है।

शीतकाल में गेहूँ के लिए तापमान उपयुक्त रहता है किन्तु फरवरी के बाद इसकी तीव्रता से बढ़ता है कि गेहूँ कुछ ही दिनों में पक जाता है। दानों को के होने का समय नहीं मिलता। यही कारण है कि भारत का गेहूँ श्रेष्ठ प्रकार का नहीं होता।

(ii) सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याएं। प्राकृतिक समस्याओं के समान ही हमारे देश की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों से उत्पन्न कृषि संबंधी समस्याएं हैं। ब्रिटिश काल की सबसे अधिक क्षति पहुँचाने वाली नीति थी देश का विभाजन। भारत और पाकिस्तान के विभक्त होने से देश की आर्थिक प्रणाली बहुत असंतुलित हो गयी और इसका प्रभाव कृषि एवं खाद्य उत्पादन पर भी पड़ा। भारत के सम्मुख यह एक गम्भीर समस्या थी कि विभाजन के कारण हुई कृषि उत्पादन क्षति को किस प्रकार पूरा किया जाय।

भू-स्वामित्व :- कृषि सम्बन्धी सामाजिक समस्या की गाँठ थी भूमि-अधिकार पद्धतियाँ जो भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न थी। सन 1971 की जनगणना के अनुसार देश में 1967 लाख कृषि मजदूर थे, जिनके पास भूमि नहीं थी। दूसरी ओर अन्य बड़ी समस्या उन भूमि धारियों की थी

जो किरायेदार भूमि देकर खेती करवाते थे।

जोतों का छोटा और बिखरा होना :- सामाजिक प्रथा के अनुसार भारत में कृषि भूमि, सम्पत्ति का एक भाग है जो संतति में बंटती जाती है। फलस्वरूप समय के साथ-साथ भूमिधारी के पास भूमि छोटे-छोटे, छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित होते हुए, कम होती जाती है। साथ ही प्रत्येक भूमिधारी की भूमि गाँव के विभिन्न भागों में बिखरी होने के कारण खेतों का आकार और भी छोटा होता जाता है।

गलत चकबन्दी :- ब्रिटिश जमींदारी प्रथा के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति तक मात्र 28% लोगों के पास 85% कृषि योग्य भूमि थी जो वर्तमान समय के चकबन्दी लागू होने के बावजूद भी ये समस्याएं बनी हुई हैं। सरकार की ढुलमुल नीति एवं गलत चकबन्दी के कारण खेतों का बिखराव कम होने के स्थान पर अधिक हो रहा है। देश में 68% जोत एक हेक्टेयर से कम तथा 18% एक से दो हेक्टेयर के बीच पाये जाते हैं।

जनसंख्या वृद्धि :- देश में जनसंख्या वृद्धि एवं परिवार विघटन के कारण खेतों के जोत छोटे हो रहे हैं। इसके साथ ही साथ मानव-आवास गृहों में वृद्धि, कल-कारखानों के निर्माण से कृषित भूमि का प्रतिशत घटता जा रहा है।

ऋण ग्रस्तता :- भारतीय किसान आज सरकारी अनुदान के बाद ऋणग्रस्तता से उबर नहीं पाया है। अभी हाल ही में कृषकों से भी कृषि आयकर लेने की बात जो सरकार ने की है वह किसानों को और ऋणग्रस्त तथा दरिद्र बनाने का ही षड्यन्त्र है। ऋणग्रस्तता के कारणों में जोत का छोटा होना, जलवायु का प्रतिकूल होना, कृषक की अज्ञानता और उसकी भंडार की सुविधा का न होना प्रमुख है। अतः प्राकृतिक आपत्ति या सामाजिक उत्सवों में ऋण के अलावा कोई चारा नहीं रहता।

अकुशल व अशिक्षित कृषक :- भारतीय किसान अधिकांशतः अशिक्षित अथवा बहुत कम शिक्षा प्राप्त है। जो उनके सामाजिक अन्धविश्वासों को पालते हैं वे भाग्य भरोसे रहते हैं। कम शिक्षा के कारण कृषि संबंधी पुस्तकों, समाचार पत्रों आदि का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। अतः किसानों का अशिक्षित होना भारतीय कृषि के पिछड़े होने की मुख्य समस्या है।

(vii) कृषि- तकनीकी सम्बन्धी समस्याएं :- भारत में सघन कृषि अवश्य होती है परन्तु इसका आधार पूंजी न होकर मानवीय श्रम है। इस दृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य कृषि पद्धतियों में आधार-भूत अन्तर है। एक ओर जहाँ भारत में ७०% जनसंख्या मात्र कृषि से जीविका पाती है वहीं दूसरी ओर इसके विपरीत पाश्चात्य देशों (यू. एस. ए. २.७%, कनाडा-५%, फ्रांस ६.८%, जापान ११%) में बहुत थोड़ी जनसंख्या कृषि कार्यों में लगी हुई है।

भारत में कृषि की मूलसमस्या कृषि की पद्धतियाँ है। इसमें खाद और उर्वरकों की समस्या, सिंचाई की कमी, कृषि उपकरण का पिछड़ा होना, उन्नत बीजों की कमी तथा सड़क एवं बाजार की असुविधाएं अधिक हैं।

उर्वरकों की समस्या :- देश में नाइट्रोजनी उर्वरक का उत्पादन होता है लेकिन पोटाश एवं फास्फेटिक उर्वरकों का भारी मात्रा में आयात किया जाता है। जहाँ जापान में प्रति एकड़ ८५० kg चीन में ९० kg, मिस्र में ३५० kg उर्वरक का प्रयोग होता है वहीं भारत में ४० kg उर्वरक ही प्रयुक्त हो पाती है। देश ने केवल नाइट्रोजनी उर्वरक में ही आत्म-निर्भरता प्राप्त की है।

सिंचाई की कमी :- वर्तमान में देश में लगभग ३३% कृषि भूमि पर ही सिंचाई की जाती है। शेष अधिकांश कृषक मानसून पर ही आश्रित रहते हैं। दक्षिणी भारत में इस समस्या का समाधान तालाबों द्वारा होता है। इस प्रकार सिंचाई की कमी के कारण उपज दर कम होती है, कृषित भूमि का अनुकूलतम तथा गहन उपयोग सम्भव नहीं हो पाता।

उपकरण, बीज, परिवहन तथा बाजार की कमी :- कृषि की जुताई हेतु मात्र १३% भाग ही ट्रैक्टर के लिए उपलब्ध है। शेष भाग की हल से जुताई होती है। जिससे फसल उत्पादन प्रभावित होता है। आज उन्नत बीजों का प्रचार-प्रसार बहुत तेज गति से हो रहा है। लेकिन उनका क्षेत्र बहुत सीमित है। कुल चावल क्षेत्र के ६४%, गेहूं के ८४%, मक्का के ५३%, बाजरा ३२%, तथा ज्वार के ७३% भाग पर ही उन्नत बीजों का प्रयोग किया जाता है।

कुछ व्यापारिक फसलें यथा चाय, रबर, कहवा, जूट, गन्ना आदि को छोड़कर अन्य फसलों के लिए बाजार की सुविधा बहुत कम है जिससे कृषकों को अपने कृषि उत्पादन का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। उच्च परिवहन दर एवं घटिया सड़कें होने से कृषि उत्पादों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में बहुत खर्च पड़ता है।

कृषि उत्पादकता व क्षमता :- कृषि विकास स्तरों (Levels of Agricultural development) का आंकलन कृषि उत्पादकता (Ag. Productivity) कृषि क्षमता (Ag. efficiency) व मिट्टियों की उर्वरता (Soil fertility) के माध्यम से किया जा सकता है। ये विकास स्तर के "पैरामीटर" कहे जा सकते हैं।

कृषि उत्पादकता सूचक का अभिप्राय "किसी क्षेत्र विशेष या प्रति इकाई में उत्पादन मात्रा से या उत्पादित मूल्य के रूप में किया जाता है।"

मिट्टीयों में किसी भी आर्थिक महत्व की फसल पैदा करने की वहन क्षमता को उनकी 'उर्वरता' कहा जाता है। Soil fertility may be defined as the Capacity of soil to produce a certain yield of economic Crops.

एक निश्चित समय में किसी इकाई क्षेत्र की उस समय में निहित निष्पादित कुशलता, जो एक दूसरे क्षेत्र को अलग करती है। वह उस क्षेत्र की 'क्षमता' कहलाती है। "Agricultural efficiency is the level of existing Performance of an area unit which differentiate one area to another in a given time." इस प्रकार तीनों ही सूचक एक दूसरे के पूरक हैं परन्तु अभिप्राय में भिन्न।

कृषि क्षमता को उत्पादकता के सन्दर्भ में निम्न तरीकों के माध्यम से आँका जा सकता है।

1. प्रति इकाई क्षेत्र के उत्पादन अंशदान (output per unit area)
2. कृषि में प्रयुक्त साधनों के सन्दर्भ में उत्पादन की मात्रा (output in relation to Input output ratio)
3. प्रति कृषक के द्वारा उत्पादन का अंशदान (output per unit of labour applieed)
4. जनसंख्या ~~का~~ उत्पादन का अंशदान (output in terms of Population)
5. मूल्यों के सन्दर्भ में उत्पादन की मात्रा (output in terms of value)

16 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तान ने भारत के सामने आत्म-समर्पण कर दिया इसी उपलक्ष्य में 16 दिसम्बर को विजय दिवस मनाया जा रहा है। आज ही शारजाह कप में फाइनल में प्रवेश के लिए वेस्टइंडीज और भारत का रोमांचक मुकाबला :-